3

शिक्षा में सृजनात्मकता एवं सौंदर्यबोध

विश्व विजया सिंह*

सृजनात्मकता नवीनता को जन्म देती है और नवीनता प्रत्येक छात्र को अपनी तरफ़ आकर्षित करती है। ज़रूरत है तो सिर्फ़ बच्चों को अवसर उपलब्ध कराने की। प्रत्येक शिक्षक कुशल अध्यापन कला से नवीनता को बढ़ावा दे सकते हैं। प्रस्तुत आलेख ऐसे ही कुछ कक्षागत प्रयासों पर आधारित है जो बच्चों में सृजनात्मकता को संप्रेषित कर रहा है।

सत्र आरंभ हुआ। प्राथमिक विद्यालय (कक्षा 3, 4, 5) में नयी-नयी कक्षाओं का गठन हुआ था। ग्रीष्मावकाश के बाद बच्चों के पुनरागमन से स्कूल में एक चहल-पहल नज़र आ रही थी। ऐसे में नए प्रवेशार्थी बच्चे नयी-नयी यूनिफ़ार्म पहने, अपने बस्ते लिए अलग-अलग से कुछ घबराए से चल रहे थे। छात्रावास में रहने वाले विद्यार्थी शहर के बाहर से आए थे, जिनमें से अधिकतर ग्रामीण परिवेश से थे, सारे माहौल को अजनबी निगाहों से भाँपने की कोशिश कर रहे थे। इन बच्चों का, जितनी जल्दी हो यहाँ के वातावरण में समायोजन हो जाए, उतना ही अच्छा होगा। दूसरे बच्चों से उनकी बातचीत हो, वे मिलजुल कर रहें, कुछ पूछना चाहें तो भी आपस में पूछ सकें, यह सोचकर अगले दिन के लिए हमने एक गतिविधि सोची।

स्कूल के पास में ही स्थित झील के किनारे से काली मिट्टी मँगवाई गयी। स्कूल परिसर में विद्यमान बड़े-से छायादार इमली के वृक्ष के नीचे 1 मीटर × 1 मीटर का एक गड्ढा खोदा गया और उसमें वह मिट्टी डालकर 3-4 बाल्टी पानी डाल दिया गया।

अब अगले दिन हर कक्षा के बच्चों को एक बार उस स्थान पर ले जाया गया जहाँ शिक्षिका ने बच्चों से कहा, ''इस गीली मिट्टी से तुम जो कुछ बनाना चाहो, बना सकते हो।'' कुछ पुराने बच्चों ने पहल की और मिट्टी हाथ में लेकर कुछ-कुछ आकृतियाँ बनाने लगे। उन्हें देखकर नए बच्चे भी आगे बढ़े और कुछ ही देर में वे सबके साथ हिल-मिलकर सृजन में जुट गए। किसी ने पशु, किसी ने गाड़ी या बर्तन बनाया तो किसी बच्चे ने क्रिकेट का बैट-बॉल

* 17, टेक्नोक्रेट सोसायटी, बेदला रोड, पो.आ. बड़गाँव, उदयपुर (राजस्थान) 313011

तैयार किया। उनके चेहरों पर आए आत्मसंतोष और आनंद के भाव अतुलनीय थे। अब नए और पुराने बच्चों में कोई अंतर नहीं दिख रहा था।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 में यह स्वीकार किया गया है कि ''कला के विविध माध्यम और स्वरुप बच्चों को खेल–खेल में तथा विषयबद्ध रूप में विकसित होने में मदद करते हैं, उन्हें अभिव्यक्ति के कई रास्ते सिखाते हैं। संगीत, नृत्य और नाटक विद्यार्थियों के आत्मबोध, उनके ज्ञानात्मक और सामाजिक विकास में सहायक होते हैं। पूर्व–प्राथमिक और प्राथमिक स्तरों पर ये सभी कलाएँ बेहद महत्वपूर्ण हैं।''

पूर्व–प्राथमिक एवं प्राथमिक स्तर तक बच्चों को संगीत सीखने का पर्याप्त समय मिलना चाहिए जिससे वे 10–20 गाने सीख जाएँ और कभी–भी अकेले में या समूह में गा सकें। इस स्तर पर गानों का चयन भी महत्त्वपूर्ण है। गाने के भाव वे समझ सकें, भाषा सरल हो, प्रत्येक शब्दों से वे भली–भाँति परिचित हों और विषय उनके आस–पास के पर्यावरण से संबंधित हों, साथ ही रोचक हों। मुझे याद है एक गाना था 'बंदर मामा की शादी में पहुँचे सभी बराती' और इसमें बरातियों में विभिन्न पशु–पक्षियों का जिक्र आता था। बच्चे इसको समूह में गाकर अत्यधिक आनंदित होते थे।

इसी प्रकार नृत्य में जब सभी बच्चे मिलकर विभिन्न भाव–भंगिमाओं के साथ अंग–संचालन करते हैं तो सभी को रुचिकर लगता है। छोटी उम्र में बच्चों को ऐसे मौके नहीं मिलते हैं। अक्सर देखा गया है कि बड़े होने पर उनमें शर्म या संकोच का भाव विकसित हो जाता है।

हमारे विद्यालय में एक अच्छा नियम है, नर्सरी स्कूल, जिसमें पूर्व–प्राथमिक कक्षाओं के अतिरिक्त कक्षा 1 व 2 भी शामिल हैं के वार्षिकोत्सव में सभी कक्षाओं के सभी बच्चों को विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से मंच पर आने का अवसर दिया जाता है। इसलिए कई बार कुछ गतिविधियों का स्तर उतना अच्छा नहीं हो पाता, जितना कुछ चयनित बच्चों द्वारा प्रदर्शन से होता है। हम लोगों का यह मानना है कि इस स्तर पर सभी बच्चों को सृजनात्मक अभिव्यक्ति के अवसर अवश्य मिलने चाहिए। कक्षा 3, 4, 5 के वार्षिकोत्सव, दल, जलसों या प्रति शनिवार आयोजित साहित्यिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों में विद्यार्थियों को इस प्रकार के भरपूर अवसर मिलते हैं।

यह भी कोशिश रहती है कि बच्चे विभिन्न भाषाओं के गीत सीखें। इसी प्रकार विभिन्न राज्यों के नृत्य करने से बच्चों का देश की विविध कलात्मक परंपराओं एवं उनकी संस्कृतियों से परिचय हो जाता है। किसी वर्ष बच्चे पंजाब का गिद्धा या भांगड़ा तो किसी वर्ष महाराष्ट्र का लावणी, गुजरात का गरबा या कोई पहाड़ी नृत्य करते दिखते हैं। इन नृत्यों हेतु प्रयुक्त विशिष्ट वेशभूषा और गीतों से बच्चे भली–भाँति परिचित हो जाते हैं।

नाटक में बहुत बच्चों की भागीदारी नहीं हो पाती किंतु उसके अभ्यास (रिहर्सल) देख–देखकर अधिकतर बच्चों को उसके संवाद याद हो जाते हैं। फिर कक्षा स्तर पर कुछ पाठों के नाटकीकरण से काफ़ी बच्चों को इस तरह के अवसर मिल जाते हैं।

बहुत छोटे बच्चे जो पेंसिल पकड़ना भी नहीं जानते अथवा जिनका अभी औपचारिक लेखन भी शुरू नहीं हुआ उन्हें भी कला के माध्यम से अभिव्यक्ति के अवसर दिए जाते हैं। बच्चों के लिए फ़िंगर पेंटिंग, स्प्रे पेंटिंग बहुत कारगर है। उँगली को रंग में डूबोकर कागज़ पर आड़ी-तिरछी लकीरें खींचना बच्चों को रुचिकर लगता है और वे उन चित्रों को अपने तरीके से व्याख्यायित करते हैं या उनके अर्थ स्पष्ट करते हैं।

इसी तरह 'रबिंग्स' भी एक रोचक गतिविधि है। कागज़ को किसी खुरदरी चीज़ पर रख कर बच्चे वैक्स कलर या क्रेयान से रगड़ते हैं और जो डिजाइनें बनती हैं, उन्हें देखकर बच्चे स्वयं आनंद की अनुभूति करते हैं। एक-दूसरे के चित्र देखने से उन्हें नए विचार भी मिलते हैं। बच्चे ऐसी खुरदरी चीजें जैसे खिड़की की जाली, कुर्सी की बेंत आदि ढूँढ़-ढूँढ़ कर उन पर रबिंग्स बना कर कुछ नया करने या उपलब्धि के भाव से खुश होते हैं।

रंगीन कागज़ों को मनचाही आकृतियों में काटना, चिपकाना या उन्हें मोड़कर अलग-अलग चीज़ें तथा नाव, हवाई जहाज, बंदूक, गेंद आदि बनाना अपने-आप में सुखद अनुभव है। बच्चा इन गतिविधियों के माध्यम से रचनात्मक कार्यों से जुड़ता है और उसे स्वयं कुछ कर पाने का अहसास भी होता है।

कठपुतली भी कला का एक सशक्त माध्यम है। कठपुतली का धागे से संचालन बच्चों के लिए कुछ कठिन होता है। छोटी आयु में दस्ताना पुतली का प्रयोग उत्तम है। बच्चे संवाद बोलकर और कठपुतली को हिला-हिलाकर आनंदित होते हैं और देखने वाले भी भरपूर आनंद लेते हैं। पंचतंत्र की कहानियों को, जिसके पात्र आमतौर पर पशु-पक्षी होते हैं, कठपुतली के माध्यम से करना बच्चों के लिए आनंददायी अनुभव होता है।

कोलॉज में अलग-अलग तरह की चीज़ों को चिपकाकर कोई कलाकृति का रूप दिया जाता है। छोटे बच्चों के लिए यह भी बड़ा रोचक होता है। तरह-तरह के बीज, सूखे हुए फूल, पत्ते या अन्य अनावश्यक या निरर्थक वस्तुओं का संकलन स्वयं कर बच्चे इनको विभिन्न आकृतियों में चिपकाकर कोई कलाकृति का रूप देते हैं। इसमें बच्चों की मौलिकता एवं कल्पनाशीलता साफ़ नज़र आती है।

प्रकृति से बच्चों का सामंजस्य स्थापित हो, वे उगते-डूबते हुए सूरज, टिमटिमाते हुए तारों, घटते-बढ़ते चाँद, खिलते हुए फूलों, बरसती हुई बूँदों या बादलों, तितलियों या चिड़ियों को देखकर, सौंधी मिट्टी की खुशबू, चिड़ियों के कलरव, बहते पानी की झर-झर से आनंद प्राप्त कर सकें। इस प्रकार समय-समय पर चर्चा और प्रकृति का सामीप्य ज़रूरी है, तभी उनमें सौंदर्यबोध का विकास होगा।

चित्रकला में बच्चों को किसी विषय से बाँधकर यथा-शिक्षक ने बोर्ड पर सेब, अमरूद, अंगूर या ऐसा ही कुछ बनाया और सभी बच्चों को अपनी ड्राइंग कॉपी में वही बनाना है, ऐसा न करके बच्चों को स्वेच्छा से चित्रांकन के लिए प्रोत्साहित किया जाए तो बड़े अच्छे-अच्छे चित्र वे बना लेते हैं। यह उनकी कल्पनाशीलता और रचनात्मकता के विकास में सहायक होता

है, साथ ही उनके व्यक्तित्व को पहचानने में भी सहायक होता है। प्रकृति प्रेमी बच्चे फूल, पेड़, पानी, सूरज, चाँद, तारे, नदी, पहाड़ आदि बनाते हैं। कुछ बच्चे मानव या पशु आकृतियाँ अधिक बनाते हैं। कुछ बच्चे बस या कार बनाना पसंद करते हैं।

जहाँ बच्चा चित्र बनाने के लिए अपनी रुचि के अनुसार विषय चुनता है, अपनी मर्जी के रंग भरता है, वहीं उसकी सृजनात्मकता को पंख लग जाते हैं। रंगों की पसंद भी हरेक की अलग-अलग होती है। यह छूट देने पर ही उनकी व्यक्तिगत पसंद और मौलिकता नज़र आती है।

शिक्षकों की सृजनात्मकता भी शिक्षण में बहुत महत्वपूर्ण एवं उपयोगी सिद्ध होती है। नए-नए शिक्षण उपकरण बनाना, अभ्यास के लिए नयी-नयी विधियाँ सोचना, नए-नए तरीके ईज़ाद करना शिक्षकों के सूझ-बूझ एवं सृजनात्मकता को दर्शाता है।

किसी सुंदर दृश्य, चित्र या कलाकृति को देखकर प्रशंसा में निकले शब्दों का बहुत दूर तक असर होता है। इसलिए बच्चों को सुंदर चीज़ों को देखकर सौंदर्यानुभूति के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। विद्यालय में ऐसा माहौल दिया जाना चाहिए कि बच्चे अपने विचार और भावनाओं को स्वेच्छापूर्वक व्यक्त कर सकें।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 के अनुसार ''कला और विरासत शिल्पों को शिक्षा से जोड़ने के संसाधन हर स्कूल में उपलब्ध होने चाहिए। इसलिए यह महत्वपूर्ण है कि पाठ्यचर्या में कला गतिविधियों के लिए पर्याप्त समय हो। नाटक, नृत्य, मूर्तिकला संबंधी कक्षाओं के लिए घंटे-डेढ़ घंटे का समय चाहिए। ज़ोर इस बात पर नहीं हो कि बच्चे वयस्कों के मानकों के हिसाब से कला सीखें या पूर्ण कला का विकास हो, बल्कि कला-शिक्षा के माध्यम से बच्चे को अपने-आप विकसित होने का मौका दिया जाए, उन पर अधिक दबाव न डाला जाए। कुछ सालों में शिक्षक की सहायता से विद्यार्थी अपने समर्पण व मेहनत से स्वतंत्र कला परियोजनाएँ प्रस्तुत कर पाएँगे जिसके साथ उनमें सौंदर्यबोध, गुणवत्ता और श्रेष्ठता का भी विकास होगा।''

यह सच है कि सभी बच्चों में सृजनात्मक क्षमता होती है यद्यपि उसकी श्रेणी में अंतर हो सकता है। यह सच्ची शिक्षा का कार्य है कि बच्चों की सृजनात्मक क्षमताओं के अधिकतम विकास के लिए उपयुक्त माहौल उपलब्ध करवाएँ। बच्चों को जितना ज्ञान और अनुभव दिया जाएगा अपने सृजनात्मक प्रयासों के लिए उन्हें उतनी ही सुदृढ़ नींव मिलेगी। एक प्रेरक और उद्दीपक वातावरण बच्चे की सृजनात्मकता को बढ़ावा देता है।

सबसे अहम् बात है कि बच्चों को इन प्रवृत्तियों में मज़ा आता है। शायद ही कोई ऐसा बच्चा होगा जिसे गाना गाकर, नृत्य या अभिनय करके अपनी बात को बोलकर या अपने विचारों को अभिव्यक्त करके, अपने हाथों से किसी वस्तु का निर्माण करके या कोई सुंदर रचना करके आनंद प्राप्त न होता हो। ज़रूरत है विद्यालयों में सृजनात्मक अभिव्यक्ति के अधिकाधिक अवसर उपलब्ध कराने की और

अभिव्यक्ति के विविध रूपों से उन्हें परिचित कराने की। इसके साथ ही सौंदर्यानुभूति भी महत्वपूर्ण है, जिसके विकास हेतु सचेतन प्रयास (Conscious effort) अपेक्षित है।

बूढ़े बाज़ की उड़ान

मैंने कहीं पढ़ा है कि बाज़ लगभग 70 वर्ष जीता है, पर अपने जीवन के 40वें वर्ष में आते-आते उसे एक महत्वपूर्ण निर्णय लेना पड़ता है। उस अवस्था में उसके शरीर के तीन प्रमुख अंग निष्प्रभावी होने लगते हैं। उसके पंजे लंबे व लचीले हो जाते हैं और शिकार पर पकड़ बनाने में अक्षम होने लगते हैं। उसकी चोंच आगे की ओर मुड़ जाती है, जिससे भोजन निकालने में व्यवधान उत्पन्न करने लगती है। पंख भारी हो जाते हैं और सीने से चिपकने के कारण पूरे खुल नहीं पाते, यानी उड़ानें सीमित कर देते हैं। उसके पास तीन ही विकल्प बचते हैं, या तो वह देह त्याग दे, या अपनी प्रवृत्ति छोड़ गिद्ध की तरह त्यक्त भोजन पर निर्वाह करे या स्वयं को पुनर्स्थापित करे।

जहाँ पहले दो विकल्प सरल हैं, तीसरा अत्यंत पीड़ादायी और लंबा। बाज़ पीड़ा चुनता और स्वयं को पुन:स्थापित करता है। वह किसी ऊँचे पहाड़ पर अपना घोंसला बनाता है और तब प्रारंभ करता है पूरी प्रक्रिया। सबसे पहले वह अपनी चोंच चट्टान पर मार-मारकर तोड़ देता है और प्रतीक्षा करता है अपनी चोंच के पुन: उग आने की। उसके बाद वह अपने पंजे उसी प्रकार तोड़ता है। नयी चोंच और नए पंजे आने के बाद वह अपने भारी पंखों को नोच डालता है और प्रतीक्षा करता पंखों के पुन: उग आने की 150 दिनों की पीड़ा और प्रतीक्षा के बाद उसे मिलती है वही भव्य और ऊँची उड़ान। इस पुन:स्थापना के बाद वह 30 साल और जीता है, गरिमा के साथ। अगर यह हकीकत नहीं है, तब भी प्रकृति हमें कितना कुछ सिखाने बैठी है।

**दैनिक हिंदुस्तान, नयी दिल्ली (दिनांक 26 दिसंबर 2011) से साभार।*

❑❑❑